सुनयना ! तेरे नैन बड़े बेचैन !

अल्पना मिश्र

हिन्दी ADDA

सुनयना! तेरे नैन बड़े बेचैन!

आदरणीया दी,

कब से यह पत्र लिखना चाह रही थी। बार-बार कुछ स्मृतियाँ, बचपन की स्मृतियाँ कौंधती थीं। उन्हें आपसे पूछने का, सही-सही जानने का मन होता था। बहुत समय से

सोचती रही, लिखना बस टल रहा था, सोच बराबर रही थी। टलते-टलते बीस वर्ष हो गए। आप भी कहेंगी, हद है यह तो! आपकी बड़ी-बड़ी आँखें हैरानी से खुल जाएँगी। सचमुच ऐसा भी क्या टालना! हमें अपने को स्थगित करना छोड़ना होगा, बड़ी खराब आदत है हमारी। अपने को टालते हैं, अपने आप को मारते हैं इसी तरह। आप ही कहेंगी, मैं जानती हूँ। मेरे कारण भी सब घरेलू कहे जाएँगे। जानती हूँ। हालाँकि मैं इसे घरेलू नहीं मानती, निहायत राजनीतिक और सामाजिक मानती हूँ आप भी मानती हैं। यह भी जानती हूँ।

खैर, इन सैद्धांतिक बातों से अलग मैं आप से बात कर रही थी बचपन की। आपको मुझसे कुछ ज्यादा याद होगा। उस दिन की बात। मैं थी शायद छठी या सातवीं में। शहर का यह सरकारी कन्या इंटर कॉलेज तब भी मुझे नया ही लगता था। स्कूल के तमाम कोने तब भी ठीक से नहीं जान पाई थी। याद है वो होम साइंस की तरफ जाने वाला रास्ता! बीच में कैसी तो झाड़-झंखाड़ उगी थी। डर लगता था उधर जाते हुए। और बाथरूम, जिसमें अचानक, दिन में कभी भी सफाई होने लगती थी, पर लगता कभी नहीं था कि सफाई हुई है। कुछ मेहतर होने चाहिए थे, नहीं थे। इसी से शायद सफाई होने का कुछ भ्रम बना रहता था। लड़कियों के लिए क्रम से बने इन आठ दस टॉयलेट में न जाने कौन सुबह सुबह गंदा कर जाता था। जब कक्षा छह में मेरा भी प्रवेश इस स्कूल में हो गया तब मुझे पता चला कि कैसे मेरे देश में लड़कियाँ आठ-आठ घंटे तक पेशाब रोके रखना सीख जाती हैं! आपने मुझे मना किया था कि मैं तब तक उधर न जाऊँ जब तक कि बहुत जरूरत न हो और अगर बहुत जरूरत हो तो दो चार लड़कियों के साथ जाओ। क्या था उधर? आपने कहा कि सब कहते हैं भूत है। कभी किसी ने देखा है, इस पर आपको भी संशय था। आपने ही कहा कि शायद कुछ गड़बड़ है उधर, बचना ही ठीक है। आपने मुझे बचाने के लिए पहले ही बता दिया था। आप मुझे बचाना चाहती थीं। उससे पहले कोई और लड़की थी ही, जिसने आपको बताया था, वह आपको बचाना चाहती थी। इस तरह एक-दूसरे को बचाने का क्रम बनता था। इसे हमें याद रखना था। पर हमीं में से तमाम लोग भूल जाते थे। यही कि एक-दूसरे को बचा लेने के प्रयत्न की एक जिम्मेदारी भी हमसे जुड़ती थी।

उधर मैं गई थी। अपनी एक सहेली को साथ लेकर। जरूरत बहुत दिन तक टाली नहीं जा सकती थी। एक रोज टालना मुश्किल हुआ था। तब जाना पड़ा था। यह मैंने आपको नहीं बताया था। बस, इंटरवल की घंटी बजते ही अपनी सहेली के साथ तीर की तरह भागी थी। इस भाग कर पहुँचने में इतना सा भी डर नहीं लगा था। बल्कि उस वक्त मैं भूत वाली बात एकदम भूल गई थी। लपक कर मैं और मेरी सहेली उस

टॉयलेट के क्रमदार दरवाजों वाले बरामदे में घुसे थे और फिर क्या? एक-एक दरवाजा खोलते और वह गंदा मिलता, दूसरा, तीसरा... आखिर कौन इतना गंदा कर गया है? यह प्रश्न हमने एक-दूसरे से पूछा था। मेरी सहेली के पास भी कोई जवाब नहीं था। हैरानी से वह रोने को थी। अब क्या करें? हम टॉयलेट के उस क्रमदार बरामदे से बाहर निकल आए। तब समझ आया कि इतनी भयानक दुर्गंध इसी से उठ रही थी। इससे पहले जल्दी में हम दुर्गंध को भी लाँघने की कोशिश कर गए थे। अब नहीं लाँघ सकते थे। चारों तरफ खाली था। कुछ दूर पर एक तरफ अध्यापिकाओं के लिए एक-एक कमरे वाले घर थे। कभी तैयार किए गए होंगे। बड़े पुराने थे। उनमें कोई रहता नहीं था। वे भी डरावने और भुतहे लगते थे।

उनके सामने भी झाड़-झंखाड़ उग गई थी जैसे कि टॉयलेट के आस-पास, सामने भी। ये सब टॉयलेट स्कूल के अहाते में एकदम पीछे, कुछ छिपे हुए से बने थे। तब भी अगर इनके सामने या अगल-बगल कोई बैठ जाए तो किसी भी क्षण, किसी भी अध्यापिका के गुजरने का एक खतरा भी बना रहता था। तमाम लोग, माली, चपरासी वगैरह इसी तरफ से हो कर गुजरते थे। कुछ लड़कियाँ छिप कर इधर के पत्थरों पर बैठ कर स्वेटर बुनती थीं। या लच्छी वाले ऊन का गोला बनाने आ जाती थीं। माली का लड़का चौबीस घंटे खुर्पी हाथ में पकड़े इधर ही कहीं रहता था। सुनसान किंतु किसी के भी आ जाने की संभावना लिए यह जगह थी। इतना भय था, न जाने बिना कुछ देखे ही अब भय से टाँगें भी हल्का हल्का काँप रही थीं। हिम्मत बनाए रखने के हजार तरीके याद नहीं आ पा रहे थे। फिर भी, फिर भी, क्या करें, हमने वह रिस्क लिया और वहीं आस-पास, एक की निगरानी में दूसरा और दूसरे की निगरानी में पहला, कुछ इसी तरह काम चला पाए और संकल्प धरे कि सचमुच कभी इधर नहीं आएँगे। इस तरह हमने भी सीखा, घंटों अपनी जरूरत को स्थगित रखना।

देखिए, यह बात मैंने आपसे छिपा ली थी। सिर्फ यही कहा था कि उधर ऐसा भी कुछ नहीं है, जिससे इतना डरा जाए। किसी ने ऐसे ही डर फैला दिया है। बस, गंदा बहुत है। गंदगी और झाड़-झंखाड़ में तमाम अदृश्य चीजों का डर हो सकता है। जो हो भी सकती थीं और नहीं भी। यह आखिरी बात मैंने नहीं कही। बल्कि एक मस्ती दिखाई। डर से मुक्ति की मस्ती जैसी मस्ती। आप कुछ कुछ जान गई थीं। चिंता आपके माथे पर उभरी थी, पर आपने मुझ पर भरोसा कर लिया था। आप मुझसे थीं ही कितनी बड़ी। मात्र तीन वर्ष! पर ऐसा लगता कि दुनिया जहान की जितनी प्रमाणिक जानकारी आपको है, वह हमें कभी हो ही नहीं सकती। सारा ज्ञान आपसे हमें सीखना होगा। गुरुदक्षिणा की भी कितनी ही बार बात उठती थी। आप कुछ अपने काम की जरूरी

चीजें इसी मद में डाल देती थीं। लेकिन हम असमर्थ शिष्य थे। माँ की हिसाब कॉपी में आपकी गुरुदक्षिणा वाली लिस्ट लिखवा देते थे।

यह सबसे ठीक जगह लगती थी, जहाँ से किसी चीज को लंबे समय तक याद किया जा सके। उतने लंबे समय तक, जब तक कि हम समर्थ न हो जाएँ। हम याद रख लेंगे, इसका हमें भरोसा था। लेकिन कहाँ? हममें से कोई भी तो आपकी गुरुदक्षिणा नहीं दे पाया! शादी के बाद सब के सब पितृसत्ता के साँचे में जबरन बैठा दिए गए। हाँफते काँपते उसी में अपने को अँटाते रहे। वहाँ कुछ अपने जैसी ही औरतें थी, सब भूल गई थीं कि औरतों को कैसा होना चाहिए। उन्हें कभी बताया ही नहीं गया था। उनकी तरफ उम्मीद से देखी हमारी सारी नजरें वापस लौट आती थीं। उन्हें अपने आकाओं के आगे लगातार अपनी ईमानदार भूमिकाओं को प्रमाणित करना पड़ता था। वे जुटी रहती थीं दिन रात। वे भूल गई थीं कि वे नींद भर नहीं सोती हैं, चैन भर नहीं देखती हैं, पेट भर नहीं खाती हैं, घ्राण भर नहीं सूँघती हैं, मन भर नहीं जीती हैं। वे अपनी महानता में बिलबिलाती हुई न जाने किसकी बाट जोहती रहती थीं। उनके पाले लड़के भी उन्हें छोड़ कर उनके आकाओं की ओर जा मिलते थे। उन्हें याद दिलाने की कोशिश में वे कोशिश करने वाले को अपना शत्रु समझ लेती थीं। मामला उतना सीधा नहीं था दी, जितना कि मैं अभी कह पा रही हूँ।

ये कौन सी मनतोरुआ बातों में फँस गई मैं भी! देखिए, जब लंबे दिनों तक आदमी नहीं बोलता तो अचानक बोलने का मौका पाने पर सब एक ही बार में बोल देना चाहता है। मैं भी यही करने लगी। मुझे माफ करिएगा। कहने के इस उतावलेपन में कुशल समाचारों का औपचारिक तरीका भी भूल गई। जरूरत थी क्या इसकी? मैं आपसे सच में पूछती हूँ? नहीं न। जाने दीजिए। अपनी इस बहन को आप जानती ही हैं। आप जितनी जिद्दी थीं, उससे एक कदम कम नहीं।

आपकी जिद वाली बात ही थी, जिसमें पूछना था। तभी से पूछना चाहती थी कि क्यों आप, छोटी सी आप, कोई सात-आठ बरस की, आठ कोस पैदल चल कर अपने लक्ष्य तक पहुँच भी गईं तो वहाँ से लौट क्यों आईं? वापस। बात आपके बचपन की थी। हमारे सामने बार बार बताने से साक्षात हो गई थी। हम उसके गवाह नहीं थे। आप खुद ही उसकी गवाह थीं। सात-आठ बरस की नन्ही सी गुड़िया आप उस दिन स्कूल नहीं जाना चाहती थीं। आपने साफ साफ कह दिया था। पर माँ बाप, बच्चों की साफ कही हुई बातों को भी साफ देखना नहीं चाहते। वे अड़े रहे कि स्कूल जाना पड़ेगा। आपको मेरी तरह स्कूल जाने से नफरत नहीं थी। आप अच्छे से तैयार हो कर जाती थीं। आपका अनुशासन अक्सर हमें उलझन में डाल देता था। पर आपके भीतर एक जिद्दी

गुड़िया भी थी। आप स्कूल के रिक्शे पर बैठ गईं और स्कूल पहुँच कर रिक्शे से उतर भी गईं। रिक्शे पर और भी कई बच्चे बैठ कर जाते थे। वे सभी उतर कर स्कूल के भीतर चले गए। आप नहीं गईं। रिक्शा मुड़ कर जब वापस लौटते हुए दृश्य से खो गया तब आप मुड़ीं और वापस चल पड़ीं। जब आपने 'न' कहा था तो उसका मतलब 'न' ही था। यह हम लोगों ने तभी जाना था। वापस लौट कर आप माँ के स्कूल के लिए चल दीं। लोग कहते हैं कि आप आठ कोस चलीं लेकिन माँ का स्कूल ढाई तीन किलोमीटर की दूरी पर था। आप इतना पैदल चल कर पहुँचीं। माँ के स्कूल तक। पता नहीं फिर क्या सूझा कि आप स्कूल के अंदर जा कर माँ को ढूँढ़ कर पा लेने के बजाय लौट पड़ीं। लौटतीं कहाँ? घर पर तो ताला था। पिता जी अपने काम पर निकल चुके थे।

इस तरह घर जाना भी व्यर्थ हुआ होगा! तब क्या हुआ? कितनी देर आप सड़क पर चलती रहीं? पता नहीं पिता जी को किसी ने खबर की थी कि वे अकस्मात ही साइकिल चलाते उधर से गुजरे थे? यह मुझे आज तक ठीक ठीक पता नहीं चल पाया। आप पकड़ी गईं और साइकिल पर, आगे के डंडे पर, अपनी तौलिया तहा कर रख कर, पिता जी ने उसी पर आप को बैठाया। थोड़ा-थोड़ा डाँटते और डराते कि इस तरह अकेले घूमने से क्या क्या हो सकता है। साधु पकड़ कर ले जा सकता है। कुआनो नदी पर बनने वाले पुल में गाड़ सकता है। पता नहीं कितने बच्चों की बलि वह दे चुका है। और जो कोई अजनबी आदमी पकड़ ले जाए तो पता नहीं क्या क्या करवाए, भीख मँगवाए, हाथ-गोड़ तोड़ कर नचवाए, आँख अंधा कर के लाठी थमा दे और चौराहे पर छोड़ दे... आप बैठ गईं, कोई और उपाय जो नहीं रहा होगा! लेकिन घर भी नहीं जाना है, घर जाने का मलतब पहले पिता जी की डाँट फिर स्कूल से लौट कर आई माँ की फटकार। कहाँ जाएँ? यही तो तय नहीं है? यही तो सब परेशानी है? आप भी कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं। फिर साइकिल के चक्र में अपना पैर डाल दिया। पैर डालने से आपकी एड़ी छिल, कट गई। खून टपकने लगा। पिता जी चौंक कर उतरे और आप को ले कर डॉक्टर के यहाँ भागे। फिर क्या? वही मलहम पट्टी शुरू और आपको पिता जी की देख रेख का अतिरिक्त सुख! माँ डाँटना भूल भाल कर आप पर प्यार जताएँ, पैर सहला कर पूछें कि रानी, अभी दर्द कर रहा है? अच्छा तरीका था इतने सारे भाई बहनों के बीच प्यार छीन झपट कर अपनी तरफ कर लेने का! पर सच सच बताइए कि क्या यही जो मैं समझ पाई, सच था? या कि आप, जो इतनी अनुशासित थीं, घर के इसी अनुशासन को नापसंद कर रही थीं? मुझे यही लगता था।

और उस दिन, उस दिन तो मैं खुद ही हैरान रह गई। हुआ यह था कि मैं अपनी सहेलियों के साथ स्कूल में इधर उधर घूम रही थी। कक्षा न जाने किस वजह से नहीं

चल रही थी। मैं थी आठवीं में और आप ग्यारहवीं में। थोड़ा छिप छिप कर घूम रहे थे। मेरी सहेली अनुराधा भी जानती थी कि अगर आपने हमें फालतू में घूमते देखा तो रोक कर प्रवचन पिला सकती हैं। वही आदर्श जीवन वाला प्रवचन। हमें इससे बड़ी कोफ्त होती थी। बेवजह अपने को हीन दिखाना पड़ता था। अपनी नहीं की गई गलती के लिए आँखें नीची रखनी पड़ती थीं। अपनी सहेलियों के आगे शर्मिंदा होना पड़ता था। बेवजह, एकदम बेवजह! बाद में कभी अवसर देख कर मैंने आपको यह जता भी दिया था। तब आपने कहा कि बड़े ऐसा कर सकते हैं। उन्हें अधिकार है। पर आपने यह भी कहा कि खुद आपको कोई लेक्चर पिलाए तो बड़ा बुरा लगेगा। फिर हमें क्यों? आप हँस पड़ीं। जिसका मतलब था कि इसमें मजा बहुत है। हम रूठ गए। तब आप मनाने लगीं। कहने लगीं कि अपने आप ही मुँह से सब अच्छी बातें छोटों के लिए निकल जाती हैं। यह अभ्यास है। उपर से चली आती एक चेन है। इसे आप तोड़ देंगी। आपने तोड़ दिया। पर फिर भी हम जानते थे कि आप हमारे अच्छे के लिए यह सब कहती थीं। आप क्यों इतनी अच्छी बन जाती थीं?

इस तरह आपसे ही बचते हुए हम घूम रहे थे। देखा कि मैदान में एक जगह लड़कियों की भीड़ लगी है। नजदीक गए तो पता चला कि कोई लड़की गाना गा रही है। पर भीड़ इतनी थी कि मैं गाने वाली लड़की का चेहरा नहीं देख पाई। हम सब सहेलियाँ इसे समय का सार्थक उपयोग मानते हुए भीड़ के पीछे ही खड़े गाना सुनने लगीं। मुलायम सी मधुर स्वर लहरियाँ तैर रही थीं। गीत के बोल थे 'अजीब दास्ताँ है ये, कहाँ शुरू कहाँ खतम...' उस दिन से पहले मैंने कभी इस गीत पर गहराई से सोचने की जरूरत नहीं समझी थी, पर उस दिन यह गीत मानो आत्मा से बह रहा था। एक आत्मा से बहता हुआ दूसरी आत्माओं को भिगोता चला जा रहा था। मैं तो डूब ही गई। मेरी सहेली अनुराधा उत्सुक हो उठी कि कौन लड़की गा रही है। वह भी इतना सुंदर, जिससे हम अब तक अनजान बने रहे! हमें अपने अनजान बने रह जाने पर गहरा अफसोस हो रहा था। अनुराधा उझक उझक कर देखने की कोशिश करती थी पर दिख नहीं रहा था। किसी सीनियर लड़की ने उसे डाँट दिया तो उसने उझक कर देखना छोड़ दिया और बोल कर पूछने लगी। आखिरकार मेरी ही कक्षा की एक लड़की ने कहा कि कोई ग्यारहवीं क्लास की दीदी गा रही हैं। मैं खुश हो गई। मैंने आत्मविश्वास से भर कर कहा कि मुझे पता चल जाएगा, क्योंकि मेरी बहन ग्यारहवीं में तो हैं। तभी एक बड़ी लड़की ने पीछे मुड़कर कहा - 'अरे वही, जिसकी बड़ी बड़ी आँखें हैं। बाप रे, इतनी बेचैन आँखें मैंने कभी नहीं देखीं।' मुझे यह टिप्पणी समझ में नहीं आई। 'बड़ी बड़ी आँखें पर बेचैन आँखें' यह क्या माजरा था? मैंने तभी सोचा था कि आपसे पूछूँगी। फिर क्या खबर आई कि भीड़ छँटने लगी। हम भी लौटने को थे कि किसी ने आपका नाम

पुकारा। मैंने तुरंत ही रुक कर देखना चाहा कि आप कहाँ हैं। तभी अनुराधा को भी यह मौका मिल गया कि वह झाँक कर गोल घेरा बना कर बैठी उन लड़कियों में आज की मनमोहिनी गायिका को देख ले। अनुराधा ने तब मुझे हिला कर कहा, 'हाय राम! अर्चना दी हैं।' मुझे बिल्कुल यकीन नहीं हुआ। मैंने अपनी खुली आँखों से तब आपको देखा। घुटने मोड़ कर मगन भाव से पलकें नीचे किए हल्का हल्का मुस्कुराती आपको मैंने देखा। यह आप नहीं थीं! घर वाली आप नहीं थीं।

यह तो आपके भीतर कोई और ही छिपा बैठा था। आज उसे देख रही थी! सफेद सलवार और आसमानी कुर्ते पर सफेद दुपट्टा इतना खिल रहा था, यह भी आज ही देखा! इस तरह मगन मन बैठी हुई आपका यह चित्र मेरे दिमाग के कंप्यूटर में आज भी सुरक्षित बना हुआ है। मन होता था कि नाचूँ, गाऊँ, चिल्लाऊँ कि मैंने आज क्या देखा, कि यह गाने वाली बड़ी-बड़ी आँखों वाली, यह बेचैन आँखों वाली और कोई नहीं मेरी है। मेरी अपनी। मेरा होना कितना बड़ा होना हो गया था उस वक्त। मैंने अनुराधा का हाथ ऐसे जोर से ऊपर उठा उठा कर नचाया कि वह खिलखिला कर हँसने लगी, फिर हाथ छुड़ाने लगी कि बस, अब छोड़ भी! 'खुशी से मर ही न जाते, अगर एतबार होता!' कुछ ऐसी ही हैरानी से खुली और प्रसन्नता से सिहरती आँखें लिए मैं चारों तरफ देख रही थी। और वही गीत मेरे मन में बज रहा था। हमेशा बजता रहा। वही गीत 'अजीब दास्ताँ है ये...।'

सचमुच अजीब दास्ताँ ही है समूची हमारी जिंदगी! इतने पहले आपको यही गाना पसंद आया था!

और तब कहीं जा कर आपने पलकें उठा कर भीड़ को देखा था। 'बेचैन आँखें' तब मुझे दिखी थीं। थिरकती हुई काली पुतलियाँ सारे जमाने को अपने में समेटे थीं। आप देख रही थीं कि लगता था कुछ खोज रही हैं! मैं आपको ताके जा रही थी कि मैं भी कुछ खोज रही थी, अपनी पहचान के निशान तलाश रही थी आपकी ढूँढ़ती निगाहों में! और आप थीं कि सबके कहीं पार निकल जाती थीं। आपसे तब से कितनी ही बार पूछा कि क्या आपने मुझे देख लिया था?

'बहुत लोग थे, तुम भी थी।' यह आप कह देती थीं। बहुत लोगों में अपने को मिला देना या अपनों को घुला देना या बहुतों में अपनों के निशान ढूँढ़ लेना, यह आपने समझाया था, पर मैं तब नहीं समझ पाई थी! अब जब समझ रही हूँ तो आपको नहीं समझा पा रही हूँ, वक्त मेरे हाथ से चिड़िया की तरह उड़ गया है। कहाँ चली गई आपकी आँखों की वह बेचैनी? कुछ तलाशती हुई वह अकुलाहट?

दुनिया को दुरुस्त करने की सारी हहराती इच्छाएँ...

शादी क्या हुई, सब कुछ इस तरह बदल गया आपका !

भावहीन सूनी आँखें लिए कहाँ देखी जा रही हैं आप ?

हम कब से, बीस सालों से उन्हीं में अपनी पहचान के चिह्न तलाश कर ले जाने की कोशिश में लगे हैं।

हम चूक गए हैं, यह जानते हुए भी।

आपकी अपनी बहन

अल्पना

नोट - आप कहेंगी कि नोट लिखने की आदत नहीं गई। बस, एक बात और, पत्र के नीचे आपकी शिष्या भी लिखना चाहती थी, पर हिम्मत ही नहीं हुई।

https://www.hindiadda.com/sunayana-tere-nain-bade-bechain/